International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

हिंदू जीवन में संस्कारों का महत्त्व

डॉ.चंद्रशेखर सिंह राजपूत
(पी-एच.डी.- संस्कृत), सहायक प्राध्यापक (हिंदी), शासकीय नवीन महाविद्यालय कुई - कुकदुर, जिला कबीरधाम (छ.ग.)

सारांश

भारतीय संस्कृति में संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कार शब्द का अर्थ शुद्धि, सुधार एवं परिष्कार से है। हिंदू धर्म में संस्कार व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया माने जाते हैं। डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार, संस्कार शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व के परिष्कार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठान हैं,

जिससे व्यक्ति समाज का पूर्ण विकसित सदस्य बन सके। इन संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति को नकारात्मक प्रभावों से बचाना, शुभता को आमंत्रित करना, धार्मिक एवं आध्यात्मिक चेतना विकसित करना तथा सामाजिक जीवन में अनुशासन स्थापित करना है। इसके साथ ही ये संस्कार पारिवारिक संबंधों, शिक्षा, दाम्पत्य जीवन और सामाजिक उत्तरदायित्वों को महत्त्व प्रदान करते हैं। इस प्रकार हिंदू जीवन के संस्कार केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं हैं, बल्कि व्यक्ति के जीवन को व्यवस्थित, अनुशासित, नैतिक एवं संस्कारित बनाने वाली भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के महत्त्वपूर्ण आधार हैं।

शब्द कुंजी (Keywords)

हिंदू संस्कार. भारतीय संस्कृति, षोडश संस्कार, आध्यात्मिक विकास, सामाजिक जीवन

संस्कार शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से संस्कृत के सम पूर्वक 'कृञ', धातु में घञ प्रत्यय जोड़कर हुई है, जिसका अर्थ है शुद्धि, सुधार अथवा स्वच्छता है। इसका प्रयोग अनेक अर्थों में होता है क्योंकि संस्कार शब्द के साथ विलक्षण अर्थों का योग हो गया है जो इसके दीर्घ इतिहासक्रम का परिणाम है। भारत के लोगों की यह हमेशा से मान्यता रही है कि मनुष्य को अपनी व्यक्तित्व को बेहतर बनाने के लिए देवताओं की मदद लेनी चाहिए। देवता भले ही दिखाई न दें, लेकिन वे मानव को सहारा देने और उन्हें सही रास्ते पर ले जाने के लिए कदम-कदम पर मौजूद रहते हैं।

संस्कार वास्तव में मानव के लिए देवताओं की मदद लेनी चाहिए। देवता भले ही दिखाई न दें, लेकिन वे के मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए एक तरह की धार्मिक ग्रन्थ हैं जो गर्भधारण से लेकर

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

मृत्युपर्यन्त चलती रहती है। डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार - संस्कार का आशय है शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों से है। जिससे व्यक्ति समाज का पूर्ण विकसित सदस्य हो सके।

संस्कार का उद्देश्य –

(1) संस्कारों के माध्यम से व्यक्तियों को अयश प्रभाव से बचाना मुख्य उद्देश्य रहा है चूँकि कुछ शक्तियाँ हित और अहित दोनों ही कर सकती है अतः हानिकारक प्रभावों से मुक्ति या अयश प्रभाव से मुक्ति विभक्त संस्कार की रीतियों से संभव है।

(2) संस्कारों का उद्देश्य संस्कार्य व्यक्ति के हित के लिए अभीष्ट प्रभावों को आमंत्रित एवं आकर्षित करना रहा है। यही कारण है कि अलग-अलग रिवाजों के तहत देवी-देवताओं की पूजा और आराधना की जाती है।

(3) संस्कारों का एक भौतिक उद्देश्य भी होता है। इनका उद्देश्य व्यक्ति द्वारा सांसारिक खुशहाली पाना भी रहा है।

(4) संस्कारों का उद्देश्य स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति भी है।

(5) संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति की अध्यात्मिकता की भावना व्यक्त करना रहा है। इस दृष्टि से आत्म साधन हेतु प्रयुक्त हुए हैं।

(6) संस्कारों का एक प्रमुख लक्ष्य व्यक्ति का निर्माण और विकास करना भी है। इससे अनुशासन में वृद्धि होती है।

हिन्दू जीवन के मुख्य संस्कार

(1) गर्भाधान संस्कार- जिस कर्म द्वारा पुरुष स्त्री में अपना बीज स्थापित करता है उसे गर्भाधान कहते हैं। शिशु का माता के गर्भ में बीज रूप में प्रतिष्ठित होना गर्भाधान है। यह संस्कार प्रजनन कार्य को उद्देश्यपूर्ण एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए किया जाता है। गर्भाधान संस्कार भली प्रकार सम्पन्न करने से गुण सम्पन्न और सुयोग्य सन्तान का जन्म होगा- ऐसी धारणा प्रचलित थी। धर्मपूर्वक काम के सेवन को सभी शास्त्रों में समर्थन मिला है। प्राणियों में धर्मानुकूल काम के रूप में स्वयं भगवान ही अवस्थित रहते हैं। गीता में स्वयं श्रीकृष्ण ने यह उद्घोषणा की है- "धर्माविरुद्धो भुतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ"। (भीष्मपर्व 31 /11)

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

(2) **पुंसवन संस्कार -** पुंसवन संस्कार- पुंसवन का शाब्दिक अर्थ है- पुरुष पुत्र को प्राप्त करने के लिए किया यज्ञ कर्म। वस्तुतः यही इस संस्कार का प्रयोजन भी है। सुन्दर स्वस्थ, सुयोग्य पुत्र प्राप्ति के लिए देवताओं से प्रार्थना की जाती है तथा गर्भ को पुष्ट एवं सुरक्षित रखने के लिए विशिष्ट प्रकार की औषधियों का सेवन करवाया जाता है। मनुस्मृति के अनुसार संस्कार को गर्भधारण के चौथे मास में सम्पन्न करना चाहिये।

(3) **सीमन्तोन्नयन संस्कार -** यह संस्कार तीसरे या चौथे माह में किया जाता है। इस संस्कार में पति अपनी पत्नी के केशों को सजाकर उसमें मांग काढ़ता है। इस संस्कार का प्रयोजन कुछ अंशों में विश्वास मात्र पर आधारित है। इसका एक अन्य प्रयोजन है गर्भवती स्त्री का निरन्तर उल्लासपूर्ण तथा प्रसन्न रखना। इस प्रसन्नता का प्रभाव भ्रूण पर भी पड़ता है और उसकी मानसिक शक्ति में वृद्धि होती है। इस संस्कार में गर्भिणी को प्रसन्न रखने के अनेक विधान है।

(4) **जात कर्म संस्कार -** यह संस्कार सन्तान के जन्म के समय किया जाता है। बालक को गोद में लेकर दूध, घी आदि से हवन किया जाता था। दही, शहद तथा घी को मिश्रित कर स्वर्ण की शलाका से शिशु को चटाया जाता था तथा उसके दीर्घ जीवन के लिए प्रार्थना की जाती थी। पिता बालक के कान में उसके दीर्घायु मन्त्र बोलता था। उसके बाद माता उसे दूध पिलाती थी। जात कर्म संस्कार हिन्दू समाज में कई रीतियां प्रचलित है। उदाहरण के लिए विशेष रूप से पुत्र उत्पन्न होने पर अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है जो कि कई दिनों तक चलती रहती है। यह क्रिया सम्भवतः भूत बाधाओं से बचने के लिए की जाती है।

(5) **नामकरण संस्कार-** जन्म के दसवें, ग्यारहवें या बारहवे दिन जो भी शुभ घड़ी में हो यह संस्कार मनाया जाता है। प्रायः यह परिपाटी है कि बालक का नाम देवताओं, नक्षत्रों, कुलदेवताओ, ग्राम देवताओं आदि के नाम पर रखे जाते हैं। कभी-कभी बालकों के गुण का सामान्य आकलन करके उसका नामकरण किया जाता है। इस अवसर पर यज्ञ, हवन आदि से ग्रह शुद्धि की जाती है तथा भोज आदि का आयोजन किया जाता है।

(6) **निष्क्रमण संस्कार-** बालक के जन्म के उपरान्त उसे एकदम ही घर से बाहर नहीं निकाला जाता है। निष्क्रमण संस्कार के बाद ही उसे बाहर निकाला जाता है। मनुस्मृति के अनुसार यह संस्कार जन्म के चौथे मास में होना चाहिये। घर

से पहली बार बाहर निकालने की प्रक्रिया निष्क्रमण संस्कार के रूप में होती थी। बच्चे की माँ की गोद में देकर सबसे पहले सूर्य दर्शन तथा रात्रि में चन्द्र दर्शन कराये जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि शिशु के शारीरिक तथा मानसिक विकास में इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।

(7) अन्न-प्राशन संस्कार - अन्न प्राशन संस्कार के पहले शिशु को अन्न का भोजन नहीं दिया जाता था, क्योंकि उसमें अन्न पचाने की शक्ति नहीं होती थी। जब शिशु पाँच महीने से आठ महीने के हो जाते और उनके दाँत निकल आते थे तब अन्न-प्राशन संस्कार किया जाता था। यह भोजन घी, शहद, दही और भात को मिलाकर बनाया जाता था, जो सरलता से पचाने योग्य होता था। अन्न-प्राशन के अवसर पर सभी गुरुजन शिशु को आशीर्वचन प्रदान करते थे।

(8) चूडाकर्म (मुंडन) संस्कार- इस संस्कार को 'चौलकर्म' भी कहा जाता है। चूड़ा का अर्थ है केशों का गुच्छा । मुण्डन के बाद सर पर केशों का जो गुच्छा या समूह छोड़ा जाता है उसे चूड़ा या शिखा कहते हैं। कोमल त्वचा सम्पन्न शिशु के सिर के केश को काटना अत्यन्त कठिन भी था और महत्वपूर्ण भी। सम्भवतः इसीलिए इसको एक संस्कार का रूप दिया गया। धर्मशास्त्रों के अनुसार चूड़ाकरण से बालक को दीर्घ आयु, सौन्दर्य तथा कल्याण की प्राप्ति होती है। सुश्रुत ने स्पष्ट कहा कि केश, नख, और रोमों को काटने से पाप का उपशमन होता है और हर्ष, लाघव, सौभाग्य तथा उत्साह की वृद्धि होती है।

पापोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम्!
हर्षलाघवसौभाग्यकरगुत्साहवर्धनम्।।

सुश्रुत चिकित्सास्थान 24/72

(9) कर्णवेध संस्कार- हिन्दू धर्म में कर्णछेदन संस्कार बालक- बालिकाओं की शारीरिक व्याधियों से रक्षा के उद्देश्य से किया जाता था। रकर्णछेदन करने से सूर्य की किरणे कानों की उन छिद्रों से प्रवेश पाकर बालक-बालिकाओ को तेज-सम्पन्न बनाती हैं।

(10) विद्यारम्भ संस्कर- विद्यारम्भ संस्कार में अक्षर-ज्ञान से परिचित कराया जाता है। यह संस्कार परिवार के कुल पुरोहित द्वारा शिशु के पांच वर्ष की आयु पूर्ण हो जाने पर कराया जाता था। इस संस्कार का उद्देश्य बच्चों में अध्ययन के प्रति रुचि उत्पन्न करना, उन्हें अनुशासन संस्कार और सदाचार की शिक्षा देना तथा ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर करना था। यह परम्परा दर्शाती है कि वैदिक समाज में शिक्षा को अत्यन्त पवित्र और जीवन निर्माण का आधार माना जाता था।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

(11) उपनयन संस्कार - संस्कारों के समस्त क्रम में उपनयन संस्कार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी संस्कार के द्वारा व्यक्ति को द्विजत्व प्राप्त होता है। बालक को गुरु के समीप ले जाकर उसे विद्यार्थी बना देने की क्रिया उपनयन संस्कार है। उपनयन का शाब्दिक अर्थ है "गुरु के समीप ले जाना"। उपनयन संस्कार में आचार्य वैदिक मन्त्रों के पाठ से देवताओं का आवाहन करके उनके समक्ष विद्यार्थी के बाँये केंन्धे के ऊपर से होते हुए दाहिने हाथ के नीचे कटि तक यज्ञोपवीत पहना देता था और उसे पहनने के लिए मेखला और पलास का दंड देता था तत्पश्चात् विद्यार्थी आचार्य से प्रतिज्ञाबद्ध होकर वेदों का अध्ययन करने का अधिकारी समझा जाता था।

(12) वेदारम्भ संस्कार- उपनयन के पश्चात् शीघ्र ही वेदारम्भ संस्कार किया जाता था। विद्यार्थी सांगो-पांग चारों वेदों का अध्ययन करने का व्रत लेता था। यह मन्त्र गायत्री मंत्र की शिक्षा से प्रारम्भ होता था। आचार्य गायत्री मंत्र की महिमा और उसके तात्पर्य को विद्यार्थी को अच्छी तरह समझा देता था। इस विचार का प्रभाव विद्यार्थियों के भावी जीवन और कार्यप्रणाली पर पड़ता था।

(13) केशान्त अधवा गोदान संस्कार- गोदान संस्कार निश्चय ही अतिप्राचीन है। पारस्कर, याज्ञवल्क्य तथा मनु ने इस संस्कार के किए "केशान्त" शब्द का प्रयोग किया है।

"केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते" (मनु. 2/68)

इस संस्कार के बाद गुरु को गौ का दान किया जाता था, सम्भवतः इसी कारण इसका नाम गोदान पड़ा। ब्रह्मचारी को सोलहवें वर्ष में केशान्त या गोदान संस्कार किया जाना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। इस आयु में शरीर में यौवन प्रविष्ट होता है जिसके कारण मन और शरीर दोनों में बहुत परिवर्तन होते हैं। वर्तमान युग में यह संस्कार नहीं किया जाता है।

(14) समावर्तन संस्कार- वेद का अध्ययन कर लेने अनन्तर गुरुकुल से अपने घर आना समावर्तन है। समावर्तन का अर्थ था- "अध्ययन समाप्त करके घर लौटना"। इस संस्कार को कई सूत्रकारों ने स्नान संस्कार भी कहा है क्योकि स्नान करना इस संस्कार की प्रमुख क्रिया है। समावर्तन में पवित्र जल में स्नान किया हुआ ब्रह्मचारी स्नातक कहलाता था, जिसका समाज में अत्याधिक सम्मान होता था। गुरु से अनुमति मिल जाने पर स्नातक गुरु को अपनी सामर्थ्य अथवा गुरु के इच्छानुसार गुरुदक्षिणा देता था।

(15) विवाह संस्कार- आचार्य के आश्रम से लौटने पर स्नातक गृहस्थाश्रम में प्रवेश पाने का अधिकारी समझा जाता था। भारतीय समाज में विवाह अत्यंत महत्वपूर्ण अनिवार्य एवम् पवित्र माना जाता है।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

विवाह के पहले वर और कन्या का युवावस्था प्राप्त कर लेना आवश्यक था। विवाह द्वारा पुरुष को अपने जीवन भर के लिए सच्चे मित्र, कुशल गृह-प्रबन्धक और गृहस्थाश्रम के लिए सहचर के रूप में पत्नी मिलती थी। वैदिक काल में विधवा स्त्रियों का पुनर्विवाह हो सकता था। ऋग्वेद के अनुसार पत्नी गृह है। इसी से पत्नी का गृहिणी नाम सार्थक होता है। तैतिरीय ब्राम्हण के अनुसार पत्नी- रहित व्यक्ति के लिए किसी यज्ञ का विधान ही नहीं है। पत्नी वास्तव में पति की अर्द्धांगिनी बनती है। इस प्रकार देखने पर भारतीय विवाह पद्धति सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से सार्थक है।

(16) अन्त्येष्टि संस्कार- किसी भी व्यक्ति का अन्तिम संस्कार अन्त्येष्टि है। गर्भाधान से प्रारम्भ होकर संस्कारों का क्रम अन्त्येष्टि के साथ समाप्त हो जाता है। यह संस्कार मृत व्यक्तियों के समबन्धियों द्वारा किया जाता है, जिससे परलोक में वह सुख और शान्ति प्राप्त कर सके।

अन्त्येष्टि शब्द का अर्थ है- अन्तिम इष्टि (यज्ञ)। भारतीय दर्शन तथा हिन्दू धर्म में मृत्यु जीवन का पूर्ण समाप्ति नहीं है, यह तो दूसरे जन्म का प्रवेश द्वार है। स्थूल शरीर नष्ट होता है जीवन नहीं। फटे वस्त्रों को फेंककर नये वस्त्र पहन लेने की ही भाँति आत्मा पुराने जीर्ण- शीर्ण शरीर को त्याग कर नवीन शरीर धारण कर लेती है। आत्मा के निकल जाने के बाद स्थूल शरीर अशुचि अथवा अपवित्र रह जाता है। मृत शरीर का दाह-कर्म या प्रवाह करने के पीछे भावना यही है कि कारण शरीर के छोड़ देने पर स्थूल शरीर हेय है; वह पंचतत्वों से बना है, अतः उसे पंच तत्वों को ही सौंप देना चाहिए, ऐसा मानकर भारतीय संस्कृति में अन्त्येष्टि का विधान किया गया है।

निष्कर्ष

संस्कारों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति में व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्येक अवस्था को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। सोलह संस्कार व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास की क्रमबद्ध प्रक्रिया को दर्शाते हैं। गर्भाधान से अंत्येष्टि तक विस्तृत यह परंपरा व्यक्ति को परिवार, समाज और संस्कृति से जोड़ने का कार्य करती है। विद्यारंभ एवं उपनयन शिक्षा और अनुशासन का महत्त्व बताते हैं, जबकि विवाह सामाजिक एवं पारिवारिक उत्तरदायित्वों को स्थापित करता है। इसी प्रकार अंत्येष्टि संस्कार भारतीय दर्शन में आत्मा और जीवन की निरंतरता संबंधी मान्यताओं को अभिव्यक्त करता है। वर्तमान समय में भी संस्कारों की मूल भावना नैतिकता, सदाचार, अनुशासन, पारिवारिक एकता और सामाजिक समरसता के रूप में प्रासंगिक है।

अतः संस्कार भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं, जो जीवन को सार्थक एवं मूल्यपरक बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सन्दर्भ सूची -

1. उदयवीर, सक्सेना (1986) अरुण प्रकाशन: हाईकोर्ट रोड, ग्वालियर, पृ.सं. 8, 41-43
2. प्रीतिप्रभा, गोयल(2014), सोलह हिन्दू संस्कार, अरिहन्त प्रभार जोधपुर, द्तीय संशोधित संस्करण, पृ.सं. 8, 27,30,49,84
3. रामजी, उपाध्याय (2000) भारत की प्राचीन संस्कृति, लोकभारती प्रकाशन: इलाहाबाद, पृ.सं. 30,35,80